*वित्तीय विनियमन: भविष्य में किस ओर**

दीपक मोहन्ती

गोखले संस्थान में इस आर्थिक कॉन्क्लेव में मुझे आमंत्रित करने के लिए मै प्रोफेसर राजस प्रचुर को धन्यवाद देता हूं। यह कॉन्क्लेव प्रख्यात विद्वानों और नीति उपयोगकर्ताओं को एक ऐसे मंच पर साथ लाया है ताकि वे भारतीय अर्थव्यवस्था से संबंधित समकालीन मुद्दों पर विचार मंथन कर सकें। विचारों का इस प्रकार का आदान-प्रदान न केवल अनुसंधान को प्रोत्साहित करने के लिए महत्वपूर्ण है बल्कि यह नीति निर्माण को आकार प्रदान करने में भी मदद देता है।

हाल के वैश्विक वित्तीय संकट ने हमें कई पाठ पढ़ाए हैं लेकिन उनका मुख्य संदेश वित्तीय विनियमन में कमी होना रहा है। बाजार अनुशासन पर अधिक विश्वास करने के कारण वित्तीय संस्थाओं पर नियमन में ढील दी गई। यहां तक कि कुछेक संस्थाओं, जिन्होंने नियामकीय परिधि के बाहर अपनी गतिविधियां प्रारंभ कर दी थीं, के लिए यह भी दुष्कर प्रतीत हो रहीं थीं। कीमत का निर्धारण करने और जोखिमों का आकलन करने में हुई चूक के कारण वैश्विक वित्तीय प्रणाली में काफी अधिक जोखिम का निर्माण हो गया।

इस पृष्ठभूमि में मैं संकटोपरान्त अवधि में विनियमन हेतु किए गए विचार-विमर्श और उपायों के संदर्भ में इसके औचित्य पर प्रकाश डालूंगा। इसके पश्चात् विनियमन के लिए रिज़र्व बैंक द्वारा अपनाए जा रहे तरीकों और बासल के नए मानकों के साथ इसके इंटरफेस के बारे में चर्चा करूंगा और इससे जुड़े कुछ मुद्दों पर विशेष प्रकाश डालते हुए अपनी बात समाप्त करूंगा।

बैंकिंग विनियमन का औचित्य

मै अपनी बात एक प्रश्न से प्रारंभ करता हूं:वित्तीय प्रणाली को नियमित करना क्यों आवश्यक है, विशेष रूप से बैंकों को? यह इसलिए आवश्यक है क्योंकि आधुनिक बाजार अर्थव्यवस्थाओं में बैंकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सर्वप्रथम, बैंक अंतिम जमाकर्ताओं से अंतिम उपभोक्ताओं तक इन निधियों को चैनलाइज़ करते हैं। इस प्रक्रिया में वे यह निर्धारित करते हैं कि किन परियोजनाओं को क्रेडिट मिलना चाहिए और वे उधारकर्ताओं पर कड़ी निगरानी रखते हैं। इन कार्यों को यदि किसी निजी बचतकर्ता पर छोड़ दिया जाए तो इन्हें संपादित करना कठिन हो जाएगा। दूसरे, बैंक भुगतान प्रणाली की आधारशिला होते हैं। अतः यदि कुछेक बैंक भी समस्याग्रस्त हो जाते हैं तो इसका परिणामी वित्तीय व्यवधान कहीं अधिक हो सकता है। तीसरे यह कि, बैंकों की जमाराशियों संबंधी करार प्राथमिक तौर पर अल्प अवधि के होते हैं और ऋणों की प्रकृति स्थिर रहती है इसलिए बैंकों पर भारी मात्रा में आकस्मिक आहरण का खतरा बना रहता है। यहां तक कि किसी बैंक के फेल होने की संभावना होने पर ही ग्राहक अन्य स्वस्थ बैंकों से भी अपनी निधियां निकालने लग जाते हैं। अन्य किसी उद्योग की तुलना में बैंकों में यह सह-संबद्धता कहीं अधिक होती है।

उपर्युक्त जोखिमों के परिप्रेक्ष्य में विनियमन के जरिए शासन द्वारा हस्तक्षेप किया जाना न्यायोचित है। तथापि, इसके कई विरोधी मत हैं। *सार्वजनिक हित संबंधी मत* जो पिगोऊ (1938) के समय का है का यह विचार है कि बाजार की असफलताओं को दूर करने के लिए सरकारें बैंकों को विनियमित करती हैं ताकि वे प्रभावपूर्ण तरीके से कार्य करने की सुविधा प्राप्त कर सकें।[1] चूंकि बैंकिंग संकटों के चलते काफी सामाजिक और आर्थिक लागत उठानी पड़ती है अतः उन्हें रोकना अक्सर सार्वजनिक नीति का एक स्पष्ट उद्देश्य बन जाता है। दूसरा अभिमत जिसे अक्सर निजी हित मत कहा जाता है, वह बाजार असफलताओं की उपस्थिति को स्वीकार करता है परंतु यह विनियमन को एक उत्पाद के रूप में मानता है जिसका परिणाम आपूर्तिकर्ताओं और मांगकर्ताओं[2] के बीच की भूमिका द्वारा निर्धारित होता है। इसका अर्थ यह है कि विभिन्न हित समूह बैंकों के लिए बनाई जाने वाली नीतियों को प्रभावित करने के लिए प्रतिस्पर्द्धा करते हैं जिसमें उनके निजी हित शामिल होते हैं, भले ही उनकी सार्थकता सामाजिक रूप से ईष्टतम न हो।

इस संदर्भ में यह उल्लेख करना दिलचस्प है कि एडम स्मिथ,जो निर्बाध अर्थ-व्यवस्था के सबसे बड़े समर्थक थे, के मामले

* 15 फरवरी 2014 को गोखले इंस्टीट्यूट ऑफ पॉलिटिक्स एंड इकोनॉमिक्स, पुणे में 'भारतीय अर्थव्यवस्थाः निष्पादन और चुनौतियां' विषय पर आर्थिक कॉन्क्लेव में भारतीय रिज़र्व बैंक के कार्यकारी निदेशक श्री दीपक मोहन्ती द्वारा दिया गया भाषण।

[1] ए. पिगोऊ (1938), दि इकोनॉमिक वेलफेयर, 4था संस्करण (लंदनः मैकमिलन)

[2] जी. स्टिगर (1971), 'दि थ्योरी ऑफ इकोनॉमिक रेग्युलेशन'। बेल जर्नल ऑफ इकोनॉमिक एंड मैनेजमेंट साइसेंस 2, 3-21।

में भी विनियमन की महत्वपूर्णता समाप्त नहीं हुई, जब उन्होंने इस प्रकार कहा किः[3]

> इसमें कोई शक नहीं है कि इस प्रकार के विनयिमनों के कुछेक पहलुओं को प्राकृतिक स्वतंत्रता के विरुद्ध माना जा सकता है। लेकिन फिर भी कुछ व्यक्तियों की प्राकृतिक स्वतंत्रता, जो संपूर्ण समाज की सुरक्षा को खतरे में डाल सकती है, पर अंकुश लगाना आवश्यक है और कानूनों के जरिए सभी सरकारों द्वारा उसे सीमित रखना आवश्यक है चाहे वह कितना भी अधिक स्वतंत्र और/अथवा निरंकुश ही क्यों न हो। आग को फैलने से राकेने के लिए जिस प्रकार दीवाल रूपी परिधि का निर्माण कराने से प्राकृतिक स्वतंत्रता का उल्लंघन होता है ठीक उसी प्रकार बैंकिंग के व्यापार को नियंत्रित करने के लिए यहां विनियमन प्रस्तावित किए गए हैं। .

यद्यपि इन दोनों मतों के समर्थन में साक्ष्य मौजूद हैं लेकिन तर्कों का झुकाव विनियमन के पक्ष में जाता है और हाल के वैश्विक वित्तीय संकट से इस तथ्य को और अधिक मजबूती मिलती है।

संकट और विनियमन

इसके पहले कि मै हाल के वित्तीय संकट के बाद उठाए गए विनियामकीय उपायों के बारे में चर्चा प्रारंभ करूं मै संक्षिप्त रूप में मध्य 1990 के दशक के एशिया के संकट के पश्चात किए गए उपायों पर चर्चा करना चाहूंगा। प्रभावी बैंकिंग पर्यवेक्षण के लिए बासल कोर सिद्धांतों को गति प्रदान की गई और आईएमएफ-वर्ल्ड बैंक वित्तीय क्षेत्र मूल्यांकन कार्यक्रम (एफएसएपी) को साकार किया गया। बासल-II नियामकीय ढांचा भी सामने आया। राष्ट्रीय स्तर पर पर्यवेक्षणीय बनावट को सुदृढ़ करने संबंधी उपायों से इन अंतर-राष्ट्रीय उपायों को संबल मिला।

वित्तीय संकट जो 2007 में प्रारंभ हुआ था और 2008 में लेहमैन ब्रदर्स के धराशायी होने के साथ ही अपनी संपूर्ण भयावहता के साथ सामने आया था उसने हमें झकझोरते हुए उठाया कि तत्कालीन विनियामकीय बनावट में लाए जा रहे नएपन को किस प्रकार धीमा किया जाए।[4] पर्यवेक्षण के प्रति सूक्ष्मविवेकपूर्ण (माइक्रोप्रूडेंशियल) विचारधारा के साथ ही सूचना अंतरालों और विषमताओं ने जोखिम संबंधी एक्सपोज़रों, जोखिम अंतरण और प्रणालीगत स्थिरता के लिए मौजूद खतरों के बारे में निगरानी रखने की पर्यवेक्षकों की क्षमता को सीमित कर दिया। हाल ही में 143 न्यायाधिकार क्षेत्रों, जिसमें उन्नत और उभरती हुई अर्थव्यवस्थाएं दोनों शामिल हैं, में फैली हुई विनियामकीय और पर्यवेक्षणीय प्रथाओं में मौजूद विभिन्नता पर वर्ल्ड बैंक द्वारा किए गए अध्ययन में यह तथ्य स्पष्ट रूप से सामने आता है कि संकट ग्रस्त देशों ने न केवल पूंजी की लचीली परिभाषाओं को अनुमति दी वरन् उन्होंने एक्सपोज़र सीमाओं में भी कड़ाई नहीं बरती।

इसके अलावा, कई 'भीमकाय'(टू बिग टु फेल) संस्थान विनियामकीय परिधि से बाहर रहे। साख प्रदाता एजेंसियों द्वारा दी गई साख और सलाहकारी सेवाओं के मिश्रण ने संभवतः पर्यवेक्षकों को आराम का एक झूठा एहसास कराया। इसके अलावा, घरेलू और मेज़बान पर्यवेक्षकों के बीच प्रोत्साहनों में मौजूद विषम संरेखीकरण ने सीमा-पार सूचना के आदान-प्रदान को बाधित किया। हांलाकि संस्थाएं अंतर-राष्ट्रीय स्तर की बन गई थीं परंतु उनके परिचालन, विनियमन का विस्तार मुख्यतः राष्ट्रीय ही बना रहा जिससे पर्यवेक्षणीय उपकरणों की प्रभावकारिता क्षतिग्रस्त होती गई।

इन कमियों को दूर करने के लिए जी-20 समूह के नेताओं ने वित्तीय स्थिरता बोर्ड की भूमिका और उत्तरदायित्व में और अधिक विस्तार करने का निर्णय लिया ताकि प्रभावकारी नियामकीय और पर्यवेक्षणीय नीतियां बनाई जा सकें। इस कार्य के एक अंश के रूप में बासल समिति ने बैंकों के लिए पूंजी और चलनिधि की नई अपेक्षाओं का निर्माण किया। बासल विनियामकीय ढांचे के तीन आधार स्तम्भ होते हैंः स्तम्भ-1ः न्यूनतम पूंजी अपेक्षाएं, स्तम्भ-2ः पर्यवेक्षणीय संवीक्षा और मूल्यांकन प्रक्रिया और स्तम्भ-3ः बाजार अनुशासन। प्रथमतः माइक्रोप्रूडेन्शियल पूंजी संरक्षण बफर- जिसे समस्या की अवधि के दौरान बैंकों को गुंजाइश प्रदान

[3] एडम स्मिथ, ऐन इन्क्वायरी इनटु दि नेचर एंड काज़ेज ऑफ दि वेल्थ ऑफ नेशन्स [ई-बुक, 2009]। (बुक-II ऑफ दि नेचर, एक्युमुलेशन एंड एंप्लायमेंट ऑफ स्टॉकः चैप्टर-II ऑफ मनी, कंसीडर्ड एज़ ए पार्टिकुलर ब्रांच ऑफ दि सोसायट, ऑर ऑफ दि एक्सपेंस ऑफ मेंटेंनिंग दि नेशनल कैपिटल)।

[4] आर.जी.राजन (2010)। *फॉल्ट लाइन्सः हाऊ हिडेन फ्रैक्चर्स स्टिल थ्रीटेन दि वर्ल्ड इकोनॉमी। प्रिंसटन एनजेः* प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।

[5] वर्ल्ड बैंक (2012)। *ग्लोबल फाइनेंशियल डेवलपमेंट रिपोर्ट* (रीथिंकिंग दि रोल ऑफ दि स्टेट इन फ्रांस)। दि वर्ल्ड बैंकः वाशिंगटन डीसी।

करने के बनाया गया है और मैक्रोप्रूडेन्शियल प्रतिचक्रीय बफर- जिसे चक्रीय उतार-चढ़ावों को सरल बनाने के लिए राष्ट्रीय प्राधिकारियों द्वारा लागू किया जा सकेगा; जैसे दो नए बफर को शामिल करने से बैंकों द्वारा रखी जाने वाली पूंजी की गुणवत्ता में सुधार हुआ है। इसकी सहायता के लिए बैकस्टॉप लीवरेज अनुपात भी लागू किया गया है जिसके तहत बैंकों को अपनी कुल आस्तियों के अनुपात के रूप में एक न्यूनतम राशि ईक्विटी में रखनी होगी। बाजार और प्रतिपक्षीय जोखिमों के लिए पूंजी अधिभार लागू किया है इसमें ओटीसी डेरीवेटिव्ज के लिए केंद्रीय प्रतिपक्षी का उपयोग करने, व्यापार और डेरीवेटिव्ज गतिविधियों, प्रतिभूतिकरण और तुलन-पत्रेतर एक्सपोज़रों के लिए अधिक पूंजी अपेक्षाओं का पालन करने पर बैंकों को प्रोत्साहित किया जाना शामिल है।

दूसरे, अविवेकपूर्ण परिपक्वता रूपांतरण की समस्या को दूर करने के लिए बासल समिति ने दो नए चलनिधि अनुपातों को लागू किया हैः चलनिधि कवरेज अनुपात (एलसीआर) जिसमें बैंकों से यह अपेक्षा की गई है कि गंभीर चलनिधि दबावों को पूरा करने के लिए उनके पास कम से कम 30 दिनों की अवधि के लिए पर्याप्त चलनिधि हो और निवल स्थिर निधीयन अनुपात (एनएसएफआर), जिसमें बैंकों से यह अपेक्षा की गई है कि एक वर्ष के क्षितिज को भांपते हुए अपने पास पर्याप्त मात्रा में स्थिर निधियां रखें।

तीसरे, स्तम्भ-3 के तहत पूर्वापेक्षा को भी काफी सुदृढ़ किया गया है और इसमें कारपोरेट अभिशासन और दबाव जांच (स्ट्रेस टेस्ट) संबंधी अपेक्षाओं में संशोधन किया गया है। स्तम्भ-3 के तहत प्रकटीकरण मानकों को भी अद्यतन किया गया है जिसमें पूंजी लिखतों और उसके घटकों का विस्तृत विवरण शामिल किया गया है।

चौथे, वित्तीय स्थिरता बोर्ड ने व्यापक स्तर पर कई प्रस्ताव दिए हैं जिसमें क्षतिपूर्ति प्रथाओं, साख निर्धारण एजेंसियों और भीमकाय संस्थाओं की असफलताओं से जुड़े मुद्दे भी शामिल हैं।

पांचवें, अंतर-राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने एफएसएपी के तहत प्रक्रियागत रूप से महत्वपूर्ण वित्तीय क्षेत्रों के साथ 25 न्यायाधिकारक्षेत्रों के वित्तीय स्थिरता अनुमानों संबंधी प्रोफाइल को भी उन्नत बना दिया है जिसमें भारत शामिल है।

आइए अब मैं उन महत्वपूर्ण उपायों पर चर्चा करता हूं जिन्हें राष्ट्रीय स्तर पर प्रमुख न्यायाधिकार क्षेत्रों में प्रारंभ किया गया है। वित्तीय स्थिरता को ध्यान में रखते हुए देशों ने अपनी संस्थागत व्यवस्थाओं को पुनः गठन किया है। इस प्रकार के तीन व्यापक नमूनो को आसानी से समझा जा सकता है। पहले मामले में केंद्रीय बैंक को प्रणालीगत स्थिरता नियामक की भूमिका प्रदान की गई है। इसको बेहतरीन तरीके से यूके की वित्तीय नीति समिति द्वारा समझा जा सकता है। दूसरे मामले के रूप में एक समन्वित प्रणालीगत स्थिरता विनियामकीय परिषद बनाने का सुझाव दिया गया है जिसकी अध्यक्षता विशेष रूप से कोषाध्यक्ष करेंगे और राष्ट्रीय वित्तीय पर्यवेक्षण के प्रमुख इसके सदस्य होंगे। यूएस की वित्तीय स्थिरता निगरानी परिषद इस प्रकार के तरीके का एक उदाहरण है। तीसरा नमूना यूरोपियन प्रणालीगत जोखिम बोर्ड (ईएसआरबी) संबंधी व्यवस्था का है। इसका मुख्य उद्देश्य यूरोपियन यूनियन के भीतर वित्तीय प्रणाली की मैक्रोप्रूडेन्शियल निगरानी करना है ताकि यूरोपियन यूनियन में वित्तीय स्थिरता के लिए उत्पन्न होने वाले प्रणालीगत जोखिमों को दूर किया जा सके।

उपर्युक्त न्यायाधिकार क्षेत्र ऐसे विनियमनों पर भी विचार कर रहे हैं जो बैंकिंग गतिविधि की व्यापकता को सीमित कर सकें या उन्होंने इस दिशा में पहले ही कदम उठा लिया है। इनमें यूएस में वोल्कर नियम, यूके में विकर्स कमीशन और यूरोपियन कमीशन की लिकानेन रिपोर्ट शामिल हैं। जर्मनी और फ्रांस में इस संबंध में विधेयकों का मसौदा तैयार किया जा रहा है।[6]

संकट के बाद की परिस्थितयों ने आभासी बैंकिंग प्रणाली में भी सुधारों की आवश्यकता की ओर इंगित किया है। यूएस और अन्य स्थानों पर यह सुनिश्चित करने के लिए विचार-विमर्श किया जा रहा है कि आभासी बैंकिंग में मूल रूप से मौजूद जोखिमों को समुचित रूप से समझा जाए और उसका प्रबंधन किया जाए। एफएसबी ने हाल ही में *ग्लोबल शैडो बैंकिंग मॉनीटरिंग रिपोर्ट* प्रकाशित की है जिसमें बैंकों और गैर-बैंकों के बीच अन्तर्संबंधों की जांच की गई है।

विभिन्न प्रकार के उपायों के बावजूद यह स्पष्ट नहीं हो पाया है कि वे वित्तीय क्षेत्र को कितना अधिक सुरक्षित बना पाएंगे। बासल पूंजी मानकों के संबंध में इस प्रकार के विचार हैं कि भलाई

[6] एल. गैम्बाकोर्टा एंड ए.वान रिक्सटेल (2013), स्ट्रक्चरल बैंक रेग्युलेशन दनीशियेटिव्जः अप्रोचेज़ एंड इंप्लीकेशन्स। बीआईएस वर्किंग पेपर 412। बीआईएसःबासल।.

[7] वित्तीय स्थिरता बोर्ड द्वारा (एफएसबी, 2011) द्वारा जिस रूप में आभासी बैंकिंग की परिभाषा को अपनाया गया है, उसके अनुसार इसमें *नियमित बैंकिंग प्रणाली इतर से निकायों और गतिविधियों के बीच ऋण मध्यस्थता* करना शामिल है।

करने के स्थान पर वे काफी कठिन हो गए है।[8] इसे अदमति और हेलविग (2013) ने भी ऐसा ही कहा है।[9]

प्रस्तावित किए जा रहे सुधारों के बावजूद आज की बैंकिंग प्रणाली उतनी ही खतरनाक और नाजुक है जितनी कि हाल के संकंट के समय थी। परंतु इस परिस्थिति में बदलाव हो सकता है।

यह नोट करना उल्लेखनीय होगा कि वैश्विक वित्तीय संकट ने विनियमन और पर्यवेक्षण के संबंध में उत्कृष्ट पहुंच बनाने के लिए एक स्वस्थ विचार-विमर्श को हवा दे दी है। इससे यह मालूम पड़ेगा कि विनियामकीय प्रक्रिया किस दिशा में आगे बढ़ रही है जिससे भविष्य में हमें इसके बेहतर परिणाम देखने को मिलेंगे। अब मुझे भारत में वित्तीय क्षेत्र से संबंधित सुधारों और विनियमनों पर अपने अनुभवों पर चर्चा करने की इजाज़त दीजिए।

भारतीय तरीका

भारत में 1990 के प्रारंभिक वर्षों तक वित्तीय प्रणाली का झुकाव मुख्यतः योजनाबद्ध विकास की आवश्यकता की ओर था और इसमें सरकार की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। बैंक की जमाराशियों के काफी बड़े भाग को भंडारों के रूप में अलग कर दिया जाता था। इसके अलावा उस समय ब्याज की प्रशासति दरों का दौर था और उसके आकार, उद्देश्य और गतिविधि सभी के संबंध में विस्तृत दिशानिर्देश दिए जाते थे। प्रौद्योगिकी का प्रचलन बहुत सीमित था और ग्राहक सेवा काफी निम्नस्तरीय थी। परिणामतः प्रतिस्पर्द्धा में कमी, अपर्याप्त पूंजी, निचले दर्ज का उत्पादन और उच्च मध्यस्थता लागत, बैंकिंग प्रणाली की प्रमुख विशेषताएं थीं।

1990 के प्रारंभिक वर्षों से ही वित्तीय क्षेत्र के सुधार इस विचार पर आधारित थे कि वास्तविक क्षेत्र में (रिअल) प्रतिस्पर्द्धात्मक कुशलता का ईष्टतम दोहन तभी किया जा सकेगा जबकि वित्तीय क्षेत्र में उल्लेखनीय सुधार किए जाएं। तदनुसार, इस प्रकार के सुधारों का मुख्य उद्देश्य यह था कि संसाधनों के आबंटन की कार्यकुशलता में सुधार लाया जाए। साथ ही साथ इन सुधारों ने वित्तीय बाजारों के विकास, नए खिलाड़ियों और लिखतों के प्रादुर्भाव, वित्तीय आस्तियों की बाजार-निर्धारित कीमतों और भुगतान एवं निपटान प्रथाओं में सुधारों पर भी ध्यान केंद्रित किया। सार रूप में जोर इस बात पर है कि गहराई और चलनिधि का निर्माण किया जाए और प्रभावी मूल्य खोज को प्रोत्साहित किया जाए।

निश्चित ही समष्टि स्तर पर विविध वित्तीय अनुपातों से वित्तीय विकास में हुई प्रगति स्पष्ट नज़र आती है (चार्ट 1)।

चार्ट 1: वित्तीय विकास संबंधी निधियों के प्रवाहों पर आधारित संकेतक

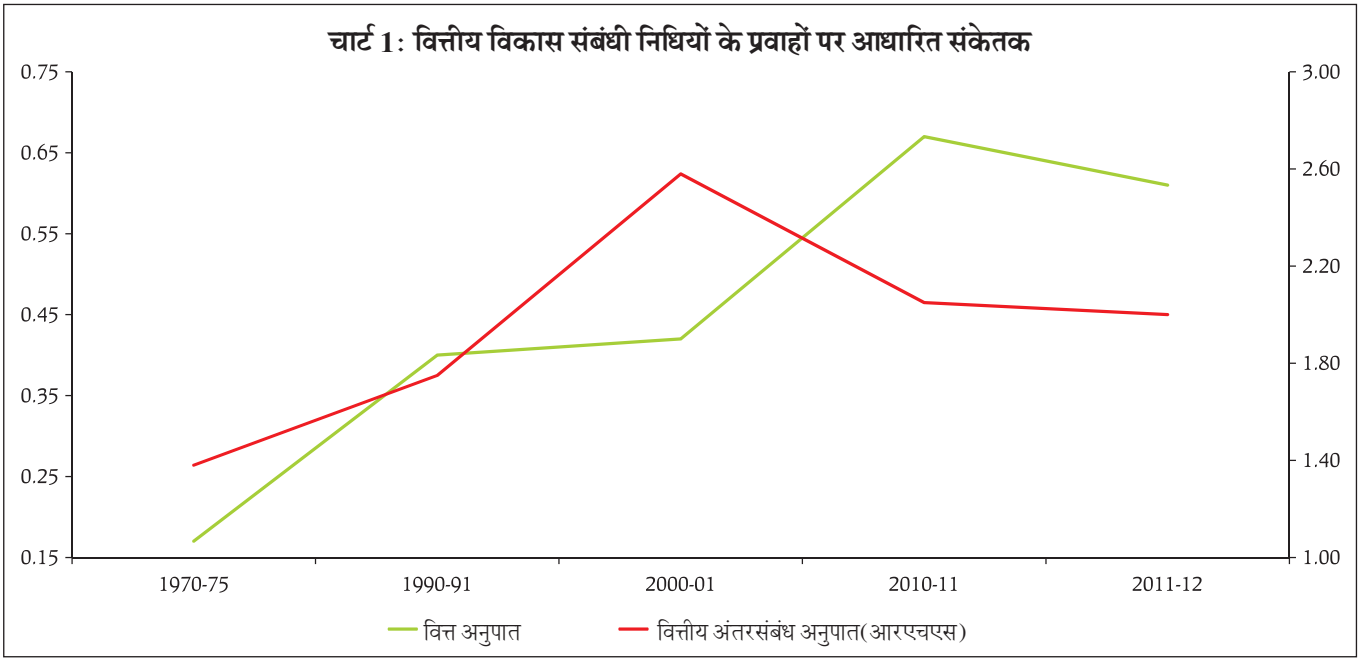

[8] ए.हाल्डने एंड वी. मौदुरॉस (2012)। ''दि डॉग एंड फ्रिसबी''। कानास सिटी के फेडरल रिज़र्व बैंक के 36वें इकोनॉमिक सिम्पोज़ियम में प्रस्तुत पर्चा। 'दि चेंजिंग पॉलिसी लैंडस्केप', जैकसन होल, डब्ल्यूवाई, यूएसए।

[9] ए. एडमति एंड एम. हेलविग (2013), *'दि बैंकर्स न्यू क्लोद्स'*, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।

चार्ट 2:वित्तीय विकास संबंधी चलनिधि और क्रेडिट आधारित संकेतक

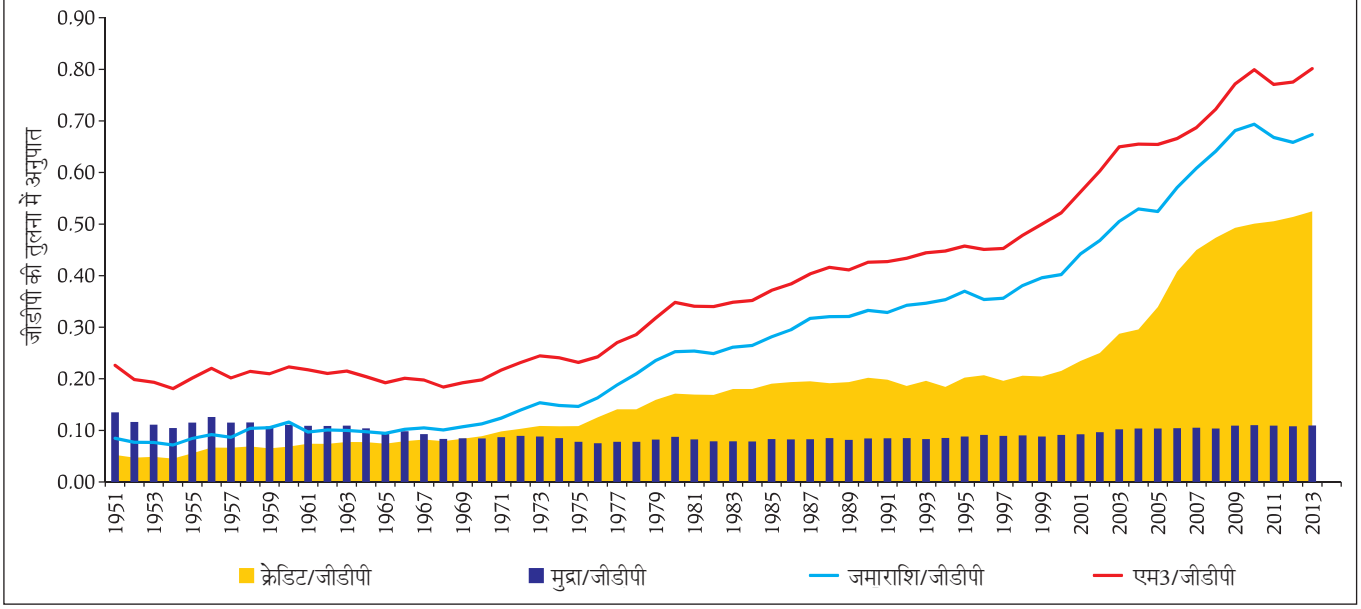

उदाहरण के लिए वित्तीय अनुपात, जिसे राष्ट्रीय आय की तुलना में अर्थव्यवस्था में कुल वित्तीय दावों का अनुपात कहते हैं, 1970 के दशक के प्रारंभिक वर्षों के 0.17 से बढ़कर 2011-12 में 0.61 हो गया है, यह वित्तीय गहराई का द्योतक है। इसी प्रकार, तदनुरूपी अवधि के दौरान वित्तीय अंतरसंबंध अनुपात जिसे निवल घरेलू पूंजी निर्माण की तुलना में कुल वित्तीय दावों के रूप में निरूपित किया जाता है, 1.38 से बढ़कर 2.0 हो गया है।

चलनिधि और क्रेडिट आधारित संकेतक भी इसी प्रकार की तस्वीर सामने लाते हैं। उदाहरण के लिए, जीडीपी की तुलना में क्रेडिट अनुपात और जीडीपी अनुपात की तुलना में ब्राड मनी ($एम_3$) अनुपात दोनों में ही इन वर्षों के दौरान काफी वृद्धि हुई है (चार्ट 2)। रोचक बात यह है कि जीडीपी की तुलना में मुद्रा अनुपात में कुछ कमी आई है परंतु जीडीपी अनुपात की तुलना में जमाराशियों में 1970 के मध्य से तीव्र वृद्धि देखी है और इसने मुद्रा आपूर्ति को काफी बढ़ा दिया है। यह आर्थिक विकास में बैंकिंग क्षेत्र की महती भूमिका दर्शाता है।

यदि देश विशेष व्यवहारों की बात की जाए तो विनियमन के संदर्भ में क्रिमिक रूप से सुधार हुए हैं और इन्होंने भारतीय मानदंडों को अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम व्यवहारों के समतुल्य ला दिया है। तदनुसार, पूंजी पर्याप्तता, आय पहचान, आस्ति श्रेणीकरण और प्रावधानीकरण (आईआरएसी) से संबंधित विवेकपूर्ण मानदंडों को सुधारों की प्रक्रिया प्रारंभ होने की शुरुआती अवधि में ही लागू कर दिया गया था।

भारत उन प्रारंभिक देशों में से एक था जिसने 2004 में ही समष्टि विवेकपूर्ण उपायों को लागू कर दिया था। इसके लिए उन चुनिंदा क्षेत्रों को बैंक द्वारा दी गई उधारियों पर उच्चतर जोखिम भार लगाया गया था जिनमें अत्यधिक विस्तार के जोखिम की संभावना देखी गई थी। यद्यपि, समष्टि विवेकपूर्ण नीतियों की प्रभावकारिता के संबंध में किए गए अंतरराष्ट्रीय अध्ययन अपने आप में पूर्णतया निर्णायक[10] नहीं है तथापि, भारतीय परिप्रेक्ष्य में साक्ष्यों का संतुलन यह बताता प्रतीत होता है कि किए गए उपाय क्रेडिट फैलाव को कम करने में प्रभावी थे।

मजबूत विनियामकीय ढांचे, भली प्रकार प्रबंधित बैंकिंग प्रणाली और नीति निर्माताओं द्वारा समय पर और अग्रणी रूप में की गई कार्रवाई ने 2008 में सामने आए वैश्विक वित्तीय संकट के गंभीर संक्रमण से हमारा बचाव किया। तथापि, लंबी-खिचीं

[10] एस. क्लासेन्स, एस.आर.घोष एंड आर.मिहेत (2013), ''मैक्रोप्रूडेंशियल पालिसीज टु मिटिगेट फाइनेंशियल वलनरेबिलटीज'' *जर्नल ऑफ इंटरनेशनल मनी एंड फाइनेंस* 39, 153-185।

वैश्विक मंदी की तेज हवाओं ने और कई घरेलू नीतिगत अनिश्चितताओं ने समष्टि अर्थव्यवस्था में क्रमिक रूप से पेवस्त होना प्रारंभ कर दिया जिसने नीतगत चुनौतियां उत्पन्न कीं।

कई सुधार जो लागू किए जाने की प्रक्रिया से गुजर रहे थे इस संकट ने उन्हें तीव्रता प्रदान कर दी। समष्टि विवेकपूर्ण नीतियों को जिस समय लागू किया गया उन्हें उन उपायों से भी मदद मिली जिन्हें कई क्षेत्रों पर केंद्रित करते हुए लागू किया गया था जैसे कि बैंकों और वित्तीय संस्थाओं की पूंजीगत लिखतों में पारस्परिक निवेश पर सीमा लगाना, सकल गैर-संपार्श्विकीकृत अंतर बैंक देयताओं पर सीमा लगाना और म्युचुअल फंडों में बैंकों के निवेश पर सीमा लगाना। इस बात को पहचानते हुए कि क्रेडिट गुणवत्ता संबंधी चिंताए वित्तीय प्रणाली की स्थिरता को प्रभावित कर सकती हैं, बैंकों के लिए उच्चतर प्रोवीजनिंग कवरेज अनुपात निर्धारित किया गया। ऐसा प्रस्ताव भी किया गया है कि इसे और अधिक सशक्त सक्रिय प्रोवीजनिंग प्रथाओं से बदला जाएगा और ऐसी संभावना है कि प्रणाली में सुधारों के साथ ही ये प्रथाएं भी लागू हो जाएंगी।

इसके अलावा, कारपोरेट घरानों के हेजिंग रहित विदेशी मुद्रा एक्सपोज़रों, बैंकों और वित्तीय संस्थाओं द्वारा पुनरुद्धार हेतु दिए गए अग्रिमों के लिए घोषित उपायों एवं चलनिधि जोखिम प्रबंधन और सामूहिक निकायों में बैंकों के एक्सपोज़रों के लिए दिशानिर्देश जारी किए गए हैं। अप्रैल 2013 के प्रारंभ से जोखिम आधारित पर्यवेक्षण को लागू किए जाने के बाद से बैंकों की निगरानी सुदृढ़ हुई है। पर्यवेक्षणीय कालेजों की स्थापना और वित्तीय क्षेत्र के विभिन्न विदेशी नियामकों के साथ समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर करने से भी पर्यवेक्षण में विचार विमर्श प्रक्रिया को और अधिक मजबूती मिली है।

संकट के पहले भी, अंतर-नियामकीय समन्वय हेतु वित्तीय क्षेत्र में संस्थागत व्यवस्थाएं पहले से मौजूद थीं ताकि अर्थव्यवस्था में वित्तीय स्थिरता की निगरानी की जा सके। 1992 में रिज़र्व बैंक के गवर्नर की अध्यक्षता में वित्तीय बाजारों के संबंध में एक उच्च स्तरीय समन्वय समिति गठित की गई थी और भारतीय प्रतिभूति और एक्सचेंज बोर्ड (सेबी), बीमा विनियामक और विकास प्राधिकरण (आईआरडीए) तथा पेंशन निधि विनियामक और विकास प्राधिकरण के अध्यक्ष और भारत सरकार के वित्त सचिव इसकेसदस्य बनाए गए थे। तथापि, संकट के बाद वित्तीय स्थिरता के लिए सामूहिक दृष्टिकोण को अपनाते हुए इसे और अधिक सुदृढ़ बनाया गया और इसके लिए वित्तीय स्थिरता और विकास परिषद गठित की गई।

इसके अलावा, रिज़र्व बैंक के केंद्रीय बोर्ड की कई समितियां वित्तीय स्थिरता संबंधी मुद्दों की निगरानी करती हैंः वित्तीय पर्यवेक्षण बोर्ड रिज़र्व बैंक के पर्यवेक्षणीय और विनियामकीय उपायों की समीक्षा करता है और भुगतान एवं निपटान प्रणालियों संबंधी बोर्ड भुगतान प्रणाली की समग्र कार्यपद्धति की निगरानी करता है।

निरंतर विस्तृत होती अर्थव्यवस्था के लिए दिन-रात बढ़ती हुई वित्तीय अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए रिज़र्व बैंक ने मौजूदा बैंकिंग ढ़ाचे की इसके आकार, क्षमता और विविध प्रकार की क्रेडिट और बैंकिंग सेवाओं की आवश्यकताओं को पूरा करने संबंधी कुशलता, इसकी पहुंच और समावेशी प्रकृति के परिप्रेक्ष्य में समीक्षा की है। इस प्रक्रिया के एक हिस्से के रूप में बैंकिंग ढांचे पर एक चर्चा दस्तावेज जारी किया गया जिसमें इस संबंध में पूर्ववर्ती समितियों द्वारा की गई टिप्पणियों को शामिल किया गया है। इस चर्चा दस्तावेज की दो प्रमुख विशेषताएं हैं; बहु स्तरीय बैंकिंग ढ़ाचे की वकालत करना ताकि समाज के विभिन्न वर्गों की जरूरतों को पूरा किया जा सके और इस प्रक्रिया को समर्थन देने हेतु प्रतिस्पर्द्धा बढ़ाने, उत्पाद विविधिता का मूल्यवर्धन करने और वित्तीय बाजारों में नए विचारों को प्रोन्नत करने के लिए नए बैंकों को सतत रूप से प्राधिकृत किया जाए। इस संबंध में मै यह भी उल्लेख करना चाहूंगा कि हाल ही में भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा नामित डॉ. नचिकेत मोर की अध्यक्षता वाली समिति जिसे वित्त तक पहुंच को व्यापक बनाने संबंधी कार्य सौंपा गया है, की रिपोर्ट जारी की गई है इसमें विभिन्न प्रकार के बैंकों की वकालत की गई है जो सम्मिलित रूप से अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को पूरा कर सकने में सक्षम होंगे।

यदि आगे की बात करें तो जैसे-जैसे वित्तीय क्षेत्र के आकार और विषमता में वृद्धि होगी, जोखिमों के नए प्रकार और स्वरूप सामने आएंगे, जिनकी सावाधानीपूर्वक कड़ी निगरानी करने की आवश्यकता होगी। प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण घरेलू बैंकों और वृहत उभयनिष्ठ एक्सपोज़रों के संबंध में केंद्रीकृत निक्षेपागार के निर्माण के संबंध में दिशानिर्देशों को जारी कर इस दिशा में पहले ही पहल की जा चुकी है।

उपसंहार

वित्तीय क्षेत्र से संबंधित कुछेक मुद्दों पर प्रकाश डालते हुए मै अपनी बात समाप्त करना चाहूंगा।

पहली यह कि वित्तीय संस्थाओं के ऋण पोर्टफोलिओं की गुणवत्ता सीधे गैर-वित्तीय उद्यम क्षेत्र के स्वास्थ्य पर निर्भर होती है। तथापि, कारपोरेट तुलन-पत्रों की मौजूदा कमजोरी, जो आंशिक रूप से धीमे आर्थिक वातावरण के कारण है, बैंकों के तुलन-पत्रों में सामने नज़र आ रही है। यदि इस रुझान को अनियंत्रित छोड़ दिया गया तो अंततः यह वित्तीय स्थिरता को प्रभावित करेगा। इस परिप्रेक्ष्य में, चूककर्ता ऋणों की समस्या का समाना करने के लिए रिज़र्व बैंक ने हाल में उपचारात्मक कार्रवाई संबंधी योजना का खाका तैयार किया है इसमें इनकी शीघ्र पहचान करने, समय पर उसकी पुनः संरचना करने और उसकी उगाही या बिक्री करने के लिए किए गए त्वरित उपायों हेतु बैंकों को प्रोत्साहित करना शामिल है।

दूसरी बात यह कि पारदर्शिता के स्तर और प्रकटीकरण मानकों को और अधिक मजबूत बनाए जाने की आवश्यकता है। कई देशों ने वित्तीय स्थिरता रिपोर्ट प्रकाशित करना प्रारंभ कर दिया है ताकि उनकी वित्तीय प्रणालियों को प्रभावित करने वाले जोखिमों और संवेदनशीलताओं का अनुमान लगाया जा सके। तथापि, वित्तीय स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए केवल वित्तीय स्थिरता रिपोर्ट प्रकाशित करना ही पर्याप्त नहीं है।[11] कई देशों में वित्तीय स्थिरता रिपोर्ट अत्यधिक व्यापक नहीं है क्योंकि उसमें आंकडों संबंधी गंभीर अंतर हैं जो कि उनके वित्तीय क्षेत्र से संबंधित समग्र अनुमानों के आकलन में बाधाएं उत्पन्न करता है, विशेषरूप से गैर-बैंकिंग क्षेत्र के बारे में। यद्यपि हमने अपनी वित्तीय स्थिरता रिपोर्ट की गहराई और विश्लेषणात्मकता को काफी बढ़ाया है फिर भी हम वित्तीय क्षेत्र में आंकड़ों के अंतर को दूर करने का प्रयास कर रहे हैं जो हमारे अनुमानों को सुधारने के लिए आवश्यक है।

तीसरे यह कि जैसे-जैसे हम कठोर और व्यापक विनियमन की ओर बढ़ेंगे, यह आवश्यक होगा कि हम बाजार में मौजूद ताकतों द्वारा निर्धारित की जाने वाली कीमत निर्धारण प्रक्रिया की ओर से भटक न जाएं। समय बीतने के साथ हम ब्याज दरों के प्रशासित ढांचे से आगे निकल चुके हैं, इसमें उधार और जमा दोनों दरें शामिल हैं। इस प्रकार के विनियंत्रण ने बैंकों को इस बात का लचीलापन दिया है कि वे अपनी जमा दरें और उधार दरें स्वयं निर्धारित कर सकते है और इससे औपचारिक वित्त तक पहुंच भी आसान हुई है। इन उन्नयनों के बावजूद कीमत निर्धारण में अभी भी विकृतियां मौजूद है जिन्हें दूर किया जाना अपेक्षित है।

चौथी बात यह कि किसी अल्पविकसित वित्तीय प्रणाली में उधारकर्ताओं और उधारदाताओं की दो पृथक श्रेणियां होती हैं। तथापि,जैसे जैसे अर्थव्यवस्था में रफ्तार आने लगती है और बैंकों के बीच प्रतिस्पर्द्धा बढ़ने लगती है, उधार देने के नए क्षेत्र जैसे कि आवास, शिक्षा, आटोमोबाइल - जिन्हें मोटे तौर पर खुदरा ऋणों के चोले में श्रेणीकृत किया जाता है- सामने आने लगते हैं जो उधारकर्ताओं और उधारदाताओं के बीच मौजूद महीन अंतर को धुंधला बना देते हैं। अतः सामाजिक कल्याण को बढ़ावा देने के लिए यह आवश्यक है कि जमा और ऋण दोनो प्रकार के उत्पादों के लिए प्रतिस्पर्द्धी और पारदर्शी कीमतें निर्धारित की जाएं।

पांचवी बात यह है कि हाल के वैश्विक वित्तीय संकट ने निवेशक की जागरुकता को सुधारने पर भी जोर दिया है ताकि न केवल भली प्रकार व्यापार स्थितियों को सुनिश्चित किया जा सके अपितु विनियमन को भी अधिक प्रभावी बनाया जा सके। विनियामकीय ढांचा चाहें कितना ही मजबूत क्यों न हो, जब तक छोटे निवेशक को अच्छी प्रकार से जानकारी नहीं होगी एक रात के खिलाड़ियों के लिए यह संभावना हमेशा बनी रहेगी कि वे विनियामकीय खामियों का फायदा उठाते रहें। इस संबंध में रिज़र्व बैंक कई उपाय कर रहा है ताकि वित्तीय साक्षरता अभियान के जरिए जागरुकता में सुधार लाया जा सके।

सारांश में वैश्विक वित्तीय संकट ने वित्तीय विनियमन के संबंध मे वृहत्तर समष्टिविवेकपूर्ण दृष्टिकोण प्रदान किया है। बेहतर गुणवत्तावाली पूंजी पर जोर दिया है ताकि वित्तीय स्थिरिता को सुरक्षित रखा जा सके। यद्यपि इसके विवरण के मामले में कई दृष्टिकोण हो सकते हैं फिर भी विनियमन में नई दिशा प्रदान करने के संबंध में व्यापक स्वीकार्यता है। चूंकि भारत वैश्विक उपायों में

[11] एम. सिहाक, एस.मुनोज़, एस.टी.शरीफुद्दीन एंड के. टिंटचेव(2012)। फाइनेंशियल स्टेबिलिटी रिपोर्ट्सः व्हाट आर दे गुड फॉर? आईएमएफ वर्किंग पेपर1। आईएमफः वाशिंगटन डीसी।

एक प्रतिभागी रहा है और कई अंतरराष्ट्रीय निकायों में इसकी उपस्थिति भी है अतः हमारा प्रयास होता है कि हम आवश्यक संशोधनों के साथ अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम प्रथाओं को अपनाए ताकि वे हमारी स्थानीय स्थितियों के अनुकूल रहें। वित्तीय विनियमन को चाहें कितना ही बेहतर क्यों न बना दिया जाए फिर भी वास्तविक अर्थव्यवस्था में मौजूद कमजोरियों को इससे बदला नहीं जा सकता है। अतः वित्तीय प्रणाली को समग्र रूप से स्थिर बनाए रखने के लिए निचली मुद्रास्फीति के साथ राजकोषीय विवेकयुक्त व्यवहार्य संवृद्धि आवश्यक है जो समष्टिआर्थिक स्थिरता की द्योतक है।

आप सभी को धन्यवाद।